वर्ष ३५ अंक ०६ सितम्बर २०११ मूल्य ५०.०० रूपये

तित्थयर

Courtesy :

मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय,

कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।

कमल सिंह करनावट
अध्यक्ष

विनोद चंद बोथरा
कोषाध्यक्ष

गौतम दूगड़
सचिव

जैन भवन

पी-२५, कलाकार स्ट्रीट
कोलकाता - ७०० ००७
फोन नं. : २२६८-२६५५, २२७२-९०२८
E-mail : jainbhawan@bsnl.in

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष ३५ अंक - ६ सितम्बर २०११

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय

पता - **Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007**

Phone : 2268-2655, 2272-9028,

Email : jainbhawan@bsnl.in

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --

Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007

Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00

Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655 and Printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street Kolkata - 700 007 Phone : 2241-1006

संपादन

डॉ. लता बोथरा,

॥ जैन भवन ॥

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	श्रमण संस्कृति की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि	इसिभासियाइं	१८५
२.	मुगलकाल में जैन धर्म एवं आचाय	नीना जैन	१९४
३.	कुवलय माला	श्री केवलमुनि	२०४

Composed by:

Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

श्रमणसंस्कृति की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि
'इसिभासियाइं'

परम शान्ति ही निर्वाण है। उस परम शान्ति को जाने के लिये हर मुमुक्षु आत्मा प्रयत्नशील है। तप और संयम की साधना के द्वारा आत्मा कर्म क्षय करता है तब वह भव परम्परा को समाप्त कर निर्वाण को प्राप्त करता है।

महाकाश्यप अर्हतर्षि कहते हैं—

णेह्न वत्तिक्खए दीवो जहा चयति संततिं।
आयाण बन्धरोहम्मि तहप्पा भव संततिं।। —इसिभा. अ.६।१६

जैसे तैल और बाती के क्षय से दीपक दीपकलिका रूप संतति को समाप्त कर देता है। उसी प्रकार आत्मा आदान-कर्मों का ग्रहण और बन्ध का अवरोध करके भव परम्परा को क्षय करता है।

यहाँ निर्वाण को दीप निर्वाण से उपमित किया गया है। बौद्ध दर्शन भी दीप निर्वाण से आत्म निर्वाण को उपमित करता है, पर दोनों उपमाओं में उतना ही विभेद है जितना कि जैन और बौद्ध दर्शन में। जैनदर्शन दीप कलिका की सन्तति रूप भव-परम्परा को मानता है। उसके क्षय से आत्मा की शुद्ध स्थिति की प्राप्ति स्वीकार करता है जबकि बौद्ध दर्शन वासना की संतति (परम्परा) के क्षय के साथ आत्मा का भी क्षय मान लेता है। जोकि अत्यन्त कारुणिक अन्त है। जब आत्मा ही समाप्त हो गया तब इतनी साधना किसलिए? यह तो वैसा हुआ कि रोग को मिटाने चले, पर रोग मिटा और उसी क्षण रोगी भी चल बसा। ऐसी चिकित्सा क्या मूल्य रखती है?

महाकवि अश्वघोष काव्यात्मक शैली में दीपनिर्वाण से आत्मनिर्वाण को उपमित करते हैं—

दीपक जब निर्वाण प्राप्त करता है तो न वह ऊपर जाता है, न नीचे जाता है। न दिशा में जाता है, न विदिशा में। स्नेह के क्षय से केवल शान्ति को प्राप्त करता है, ऐसे ही निर्वाण प्राप्त आत्मा न पृथ्वी पर आता है न आकाश में, न वह दिशा में जाता है न विदिशों में। क्लेशक्षय होने पर केवल शान्तिप्राप्त करता[1] है।

जैन दर्शन ने कहा है निर्वाण के बाद आत्मा शुद्ध स्थिति में लोकाग्र पर स्थित रहता है।[2] उस निर्वाण को प्राप्त करने के लिये एक प्रमुख साधन है सम्यग्दर्शन। तत्व-प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम उसके स्वरूप का ज्ञान होना आवश्यक है। वस्तु के स्वरूप पर निश्चित श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है।[3] जैन दर्शन में सम्यग्दर्शन की तीन प्रकार से व्याख्या की गई है। प्रथम व्याख्या के अनुसार सुदेव सुगुरु और सुधर्म पर श्रद्धा रखना ही सम्यग्दर्शन[4] है।

ज्ञान की प्रथम सीढ़ी तक यह व्याख्या ठीक है किन्तु जब विचार चर्चा आगे बढ़ती है, तब यह व्याख्या कुछ अपूर्ण सी रह जाती है। यदि देव गुरु धर्म पर श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है तो जो समस्त विकारों पर विजय पाकर जो अरिहन्त बन चुके हैं उनके लिये देव कौन हैं, उनके गुरु कौन हैं, और उनका धर्म क्या है। क्योंकि वे स्वयं ही देव स्वरूप हैं। उनका ज्ञान स्वयं के लिये गुरु तुल्य है और उनकी वाणी ही धर्म

---

1. दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
   दिशं न कांचित् विदिशं न कांचित् स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम्।।
   तथाकृतिर्वतिमभ्यपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
   दिशं न कांचित् विदिशं न कांचित्, क्लेशक्षयात् केवलमेति शान्तिम्।।
   — अश्वघोष, बुद्धचरित
2. तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्। — तत्त्वार्थ अ. 10।5
3. तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।। — तत्त्वार्थ सूत्र अ. 1 - 2
4. या देवे देवता बुद्धि गुरौ च गुरुता मतिः।
   धर्मे च धर्मधीः शुद्धाः सा सम्यक्त्वमिदमुच्यते — आ. हेमचन्द्र योगशास्त्र द्वितीय प्रकाश।

है। अतः दूसरी व्याख्या आती है। तत्वों का स्वरूप दर्शन कर उसके प्रति अचल आस्था रखना ही सम्यग्दर्शन है। चैतन्य का स्वरूप क्या है यह भेद विज्ञान पाकर पदार्थों का स्वरूप दर्शन करना सम्यग्दर्शन है। पदार्थ विज्ञान रूप सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के बाद ही मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान के रूप में परिणत होता[5] है।

भगवती सूत्र में आचार्य सुधर्मास्वामी सम्यक्त्व की परिभाषा करते हुए फरमाते हैं कि वहीं सत्य है जो जिनेश्वर देव ने प्रतिपादित किया है और ऐसा श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है।[6]

तत्त्वार्थसूत्रकार आचार्य उमास्वाति सम्यग्दर्शन के सम्बन्ध में लिखते हैं–सम्यग्दृष्टि का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान होता है। अतः आद्य तीनों ज्ञान (मतिश्रुतावधि) अज्ञान भी होते हैं, क्योंकि वे मिथ्यात्व दशा में भी पाये जाते हैं।[7]

यह तत्व रुचि रूप सम्यग्दर्शन भी एक स्थान पर जाकर सीमित हो जाता है। सिद्ध स्वरूप में स्थित आत्मा के लिये तत्व रुचि का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। यद्यपि उनके अनंत ज्ञान में विश्व के समस्त पदार्थ–सार्थ समस्त पर्यायों के साथ प्रतिभासित होते हैं फिर भी सिद्ध प्रभु जड़ चैतन्यादि तत्वों का लक्ष्यपूर्वक पार्थक्य नहीं करते। अतः तत्त्वार्थ श्रद्धात्मक सम्यक्त्व भी सिद्ध स्थिति में उतनी स्पष्टता के साथ

---

5. जीवादि सद्दहणं समत्तंरूवमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेस मुक्कं णाणं खु होदि सदि जम्हि ।। – द्रव्यसंग्रह गा. 41
6. तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहिं पवेइयं। – भगवती सूत्र.
7. सभ्यग्दष्टेर्ज्ञानं सम्यग्ज्ञान मिति नियमतः सिद्धम्।
आद्यत्रयज्ञानमज्ञानमपि भवति मिथ्यात्वसंयुक्तम्।
वाचकमुख्य उमास्वाति प्रशमरति प्रकरण।
मति श्रुतावधयो विपर्ययश्च ।। – तत्त्वार्थ अ. 1

प्रतिभासित नहीं होती है। अतः आचार्यों ने एक अन्तिम व्याख्या और दी है:—स्वात्मोपलब्धि रूप सम्यक्त्व। आत्मा का शुद्ध स्वरूप ही सम्यक्त्व है और वह सम्यक्त्व सिद्धात्माओं में भी स्पष्ट रूप से प्रतिभासित है[8]।

इसिभासियाइं सूत्र में महाकाश्यप अर्हतर्षि सम्यक्त्व और ज्ञान की उपादेयता बताते हुए कहते हैं— जैसे अग्नि और पवन के प्रयोग से स्वर्ण विशुद्ध हो जाता है वैसे ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के द्वारा युक्त आत्मा पाप से विशुद्ध होता है[9]।

सम्यग्दर्शन की उपादेयता जैनदर्शन में ही नहीं अजैन दर्शनों में भी स्वीकार का गई है। हिन्दु धर्म के सामाजिक विधि नियमों के प्रणेता महर्षि मनु मनुस्मृति में सम्यग्दर्शन के सम्बन्ध में लिखते हैं:-

सम्यग्दर्शन से सम्पन्न आत्मा कर्म से बद्ध नहीं होता है और दर्शन से विरहित आत्मा संसार को प्राप्त करता[10] है।

सम्यग्दर्शन आत्मदर्शन का वह प्रकाश है जिसके प्राप्त होने पर आत्मा स्व और पर का विवेक करता है। विचार-जगत् में वह खुले *दिमाग के साथ प्रवेश करता है।* उसके लिये अन्य दर्शन भी स्वदर्शन है। जो हंस बुद्धि को लेकर चलता है उसके लिए सर्वज्ञ दूध है, क्योंकि पानी को उसकी चंचु दूर कर देती है।

भाष्यकार जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण विशेषावश्यक भाष्य में लिखते हैं— पर समय (सिद्धान्त) और स्वसमय दोनों ही सम्यग्दृष्टि आत्मा के

---

8. सम्प्रं च मोक्खवीयं तंपुण भुयत्थसद्दहणारूवं।
पसमाइ-लिंग-गम्मं सुहायपरिणाम रूवं तु। — आ. देवगुप्त – नवतत्त्व प्रकरण.

9 इसिभासियाइं अ. 6।26

10. सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबध्यते।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ।। — मनुस्मृति अ. 6

लिये स्व समय ही है। जो मिथ्यामतों का समूह सम्यक्त्व में उपकारी है वहां पर सिद्धान्त भी सम्यक्त्वी के लिये स्व समय[11] ही है।

इस प्रकार हम देखते हैं। भारतीय दर्शन की तीनों धाराओं के विचार सूत्रों में बहुत कुछ साम्य है। उनके दार्शनिक तथ्य कहीं साम्य रखते हैं तो एक स्थान पर जाकर अलग भी हो जाते हैं। यहां उनके साम्य वैषम्य का आंशिक दिग्दर्शन कराया गया है।

ऋषिभाषितसूत्र की भाषा :

इसिभासियाइं सूत्र की रचना पद्धति '**त**' श्रुति प्रधान है। संस्कृत '**तथा**' शब्द का प्राकृत में तहारूप होता है। किन्तु जिस प्राकृत पर शौरसेनी और पैशाची की छाया है उसमें हकार श्रुति के स्थान पर तवर्ग की श्रुति आती है। संस्कृति '**तथा**' को वे '**तधा**' बोलेंगे।

प्राकृत शब्द उन तमाम प्राचीन भाषाओं के लिये प्रयुक्त होता है जो जन साधारण में संस्कृत के स्थान पर बोली जाती थी। हर प्रान्त की अपनी भाषा थी और उनमें थोड़ा कुछ अन्तर अवश्य था। आज के प्राकृत साहित्य में जो विभेद दृष्टिगोचर होता है, उसमें प्रान्तीय भाषाओं की छाया है। शैलिभेद प्रान्तीय भेद पर आधारित है। महाराष्ट्र में बोली जानेवाली आर्य भाषा महाराष्ट्रीय प्राकृत थी, तो आगरा के आसपास में बोली जानेवाली प्राकृत शौरसेनी कहलाती थी। स्थल की दूरी ने भाषा में बहुत बड़ा विभेद खड़ाकर दिया है और यह स्वाभाविक भी है। प्राकृत में यद्यपि सबका समावेश हो जाता है। फिर भी उनकी प्रकृति में अन्तर अवश्य है।

---

11. परसमओ उभयं व सम्मदिट्ठिस्स ससमओ जे णं।
तो सव्वज्झयणाइं ससमयवतव्वं निययाइं।।
मिच्छतमयसमूहं समत्तं जं च तदुवगारम्मि।
वट्टइ पर सिद्धंतो तो तस्स तओ ससिद्धंतो ।।

— विशेषावश्यक भाष्य 653-54

मूल आगम में जिस प्राकृत का व्यवहार हुआ है उसमें मागधीभाषा का प्राधान्य है। इसीलिए उसे अर्धमागधी कहा जाता है और अर्धमागधी की व्याख्या ही यह है कि जिसमें मगध प्रान्त और उसके निकटवर्ती प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का समावेश हो। स्वयं मागधी और अर्ध मागधी में भी कुछ अन्तर है।

जिस सूत्र की रचना जिस प्रान्तीय भाषा विशेष में हुई है उसकी रचना पद्धति में तत् तत् प्रान्तीय भाषा का बहुत कुछ हाथ रहा है। इसीलिए आचारांग सूत्र की भाषा में गठन जो सुदृढ़ता है और अर्थगांभीर्य है हव उत्तरवर्ती सूत्र कृतांग आदि आगमों में नहीं पाया जाता है।

श्रुत परम्परा के अनुसार समस्त आगमों के अर्थ-प्रणेता भगवान महावीर हैं और उनकी शब्द-रचना गणधर देव करते हैं[12]। विशेषावश्यक भाष्य में आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण इसके लिये सुन्दर रूपक देते हैं।

तप नियम और ज्ञान रूप वृक्ष पर आरूढ़ अनंत ज्ञानी केवली प्रभु भव्यात्माओं के बोध के लिये ज्ञानरूप फूलों की वृष्टि करते हैं। गणधरदेव उन ज्ञान पुष्पों को बुद्धिरूप पट में ग्रहण करके तीर्थंकर भाषित वाणी को प्रवचन रूप में ग्रथित करते हैं[13]। वर्तमान द्वादशांगी की शब्द रचना आचार्य सुधर्म द्वारा हुई है। किन्तु कुछकाल तक श्रुत परम्परा के द्वारा यह द्वादशांकी मौखिक रूप में रही। लिपिबद्ध न होने से विभिन्न प्रान्तों में विचरने वाले आचार्यों की प्रान्तीय भाषा के उच्चारण अप्रत्यक्ष रूप से प्रवेश कर गये। जब आचार्य देवार्द्धिगणि क्षमा श्रमण

---

12. अत्थं भासह अरहा गन्थं गुन्थन्ति गणहरा णिउणा।।

13. तव नियम नाण रुक्खं आरूढो केवली अमियनाणी।
तो मुयइ नाणवुट्ठिं भविय जण विबोहणट्ठाए।
तं बुद्धिमएण पडेण पडेण गणहरा गिण्हिउण निरवसेसं।
तित्थयर भासियाइं गंथन्ति तओ पवयणट्ठा ।।
– विशेषावश्यक भाष्य (निर्युक्ति) 1094-95

के नेतृत्व में आगम पुस्तकारूढ़ हुए तब यह उच्चारण भेद स्पष्ट हुआ। कहीं उच्चारणभेद के साथ शब्द भेद और अर्थभेद कभी सामने आया। किन्तु उस समय उच्चारणभेद को उपेक्षित कर दिया और शब्दभेद और अर्थभेद को पाठान्तर के रूप में स्थान दिया गया। 'बितियं' 'बिइयं' में उच्चारण भेद हैं, 'दुइज्जं' में शब्द भेद हैं। किन्तु पाठान्तर में कहीं शब्दभेद रहता है तो कहीं थोड़ा अर्थभेद भी आ जाता है।

वल्लभी वाचना के समय जब बहुश्रुत मुनि एकत्रित हुए और समवेत आगम वाचना हुई तब विभिन्न आचार्यों के मुंह से विविध पाठ सामने आये। आचार्य देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण ने आगम के हार्द को परखते हुए बहुमत के आधार पर मूल पाठ तैयार किया और शेष को पाठान्तर के रूप में पृथक् स्थान दे दिया गया। आगम सम्पादन के गुरुतर कार्य को काफी विचार पूर्वक करने पर भी कहीं कहीं स्खलना रह गई। जैसे कि अन्तकृतांग सूत्र के तृतीय वर्ग के प्रथम छः अध्यायों में नाग गाथापति के अनियसेन आदि छः कुमारों का विवाह चारित्र और निर्वाण प्राप्त का निरूपण है। उनकी निर्वाण की कहानी समाप्त हों जाने के बाद तप और त्याग के उज्ज्वल नक्षत्र गजसुकुमार की कहानी प्रारंभ होती है और महारानी देवकी के प्रासाद में दो-दो के रूप में छः मुनि प्रवेश करते हैं।

ये छः मुनि कौन से है? प्रभु नेमिनाथ समाधान देते हुए महारानी देवकी से कहते हैं 'ये तेरे ही पुत्र हैं किन्तु हरणगमेषी के द्वारा सुलेसा को प्राप्त हुए[14] हैं'।

निर्वाण प्राप्त मुनियों का फिर से जीवित होकर भिक्षा के लिये जाना अटपटा–सा लगता है। इतना ही नहीं, कहानी की स्वाभाविकता समाप्त हो जाती है। अच्छा तो यह रहता कि उनका निर्वाण भी गजसुकुमार के साथ दिखाया जाता।

---

14. अन्तकृतांग सूत्र तृतीयवर्ग अ. सू. 7

आचार्य देवर्द्धिगणि ने पाठान्तरों को भी आदर का स्थान दिया। पाठान्तरकारों में आचार्य नागार्जुन का स्थान महत्व पूर्ण है। नंदीसूत्र के वृत्तिकार आचार्य हरिभद्र सूरि स्थविरावलि की व्याख्या करते हुए कहते हैं अब[15] मैं श्री हिमवन्त आचार्य की स्तुति करता हूँ जिनके शिष्य श्री नागार्जुन नामक आचार्य हैं। आचारांग, सूयडांग, उत्तराध्ययन आदि सूत्रों में पाठान्तर रूप पाठ उनके हैं। वे कालिक श्रुत की व्याख्या के पूर्णतः ज्ञाता थे और बहुत से पूर्वों के पाठी थे। अतः उनके पाठ प्रामाणिक माने गये हैं।

आगमों का गहराई से अध्ययन करें तो ज्ञान होगा कि पाठान्तरों का महत्वपूर्ण स्थान है और पाठान्तर के सामने रखकर आगम की व्याख्या की जाय तो मैं समझता हूँ काफी नये रहस्य ज्ञात हो सकेंगे। आज का व्याख्याकार मूल पाठ को महत्व देकर उसी की व्याख्या करता है और पाठान्तरों को फुटनोट में देकर आगे चल पड़ता है। किन्तु पाठान्तरों की व्याख्या की भी आवश्यकता है। क्योंकि पाठान्तर नया अर्थ रखता है और उसके द्वारा सम्पूर्ण गाथा से नया अर्थ प्रस्फुटित होता है।

पाठ भेद के साथ उच्चारण भेद को भी महत्व देना चाहिए। कई प्रतियों में '**त**' श्रुति की प्रधानता है तो कई प्रतियों में '**य**' श्रुति की। सूत्र के लिये कहीं '**सुत्त**' शब्द का प्रयोग हुआ है तो कहीं '**सुय**' । कहीं च आता है कहीं च के लिये य आता है। इसिभारियाइं सूत्र के पाठ संशोधन के लिये प्रसिद्ध आगम सेवी विद्वान मुनि श्री पुण्यविजयजी म. के द्वारा पाटन भण्डार की चार प्रतियां प्राप्त की गई थी। उनमें तीन

---

15. कालिय सुय अणुओगस्स धारए य पुव्वाणं।
हिमवन्त खमासमणे वन्दे णागज्जुणायरिये।।
मिओ-मद्दव-सम्पन्ने अणुपुव्विं वायगत्तणं पत्ते।
ओह-सुय-समायारे णागाज्जुण वायएवन्दे ।।

— श्री नंदीसूत्र स्थविरावलि गा.39

प्रतियों में परिग्रह शब्द के लिये सर्वत्र परिग्रह ही आया है। यद्यपि प्राकृत व्याकरण के अनुसार परिग्रह के लिये परिग्गह शब्द आता है। पर हम कैसे मानले कि परिग्रह शब्द लिखने में वृद्ध लेखकों की स्खलना हुई है? यदि प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में ऐसे शब्द मिलते हैं तो फिर क्यों न उन्हें स्वीकार किया जाए? व्याकरण भाषा के पीछे चलता है। वह शासन नहीं, अनुशासन करता है। महान वैयाकरण पाणिनीजी ने भी समस्त आर्ष रूपों को मान्यता दी है उसके लिए पृथक् सूत्र बनाये हैं और जो आर्ष रूप से अष्टाध्यायी से सिद्ध नहीं होते उन्हें वार्तिककार वार्तिकों के द्वारा सिद्ध करते हैं।

आगम में आत्मा के '**अप्पा**' '**अत्ता**' '**आया**' आदि विभिन्न पर्याय मिलते हैं। ये तमाम उच्चारण भेद प्रान्तीय भाषा भेद को लेकर आये हैं।

इसिभासियाइं सूत्र में आत्मा के लिये '**आता**' शब्द का ही अधिककर प्रयोग हुआ है[16]। इसमें '**तश्रुति**' की प्रधानता है। किस शब्द का उच्चारण किस भाषा से अधिक साम्य रखता है, इस सबके लिये हमें सूत्रों का गहराई से अध्ययन करना होगा। इसके लिये सर्व प्रथम आगमों की '**तश्रुति**' प्रधान पाठों वाली एक प्रति तैयार करनी होगी। उसके लिये भाषा विज्ञान का गहरा अध्ययन अपेक्षित है। भाषा विज्ञान के आधार पर जो प्रतियां तैयार होंगी वे भाषाविदों के लिये भी काफी खोजपूर्ण सामग्री प्रदान करेगी।

क्रमशः

16. आता खेत्तं। इसि. अ. 5
आता जाणाह पज्जवे। इसि. अ. 6

अकबर का जैन आचार्यों एवं मुनियों से सम्पर्क तथा उनका प्रभाव

नीना जैन

शिया और सुन्नियों के पारम्परिक वाद-विवाद, आरोप-प्रत्यारोप तथा द्वेष पूर्ण संघर्ष के कारण इस्लाम धर्म पर से अकबर की रुचि हट गयी। पर फिर भी वह यही चाहता था कि किसी प्रकार से उसे धार्मिक तत्त्व की बातें मालूम हो, फलतः उसने 3 अक्टूबर 1578 को हिन्दू, जैन, ईसाई, यहूदी, सूफी, पारसी विद्वानों एवं सन्तों के लिए इबादतखाने का द्वार खोल दिया। अकबर ने इबादतखाने में अपनी सभा के सदस्यों को पांच भागों में विभक्त किया था।[1] उनमें कुल मिलाकर 140 सदस्य थे[2] प्रथम वर्ग में वे लोग थे, जो कि दोनों लोगों का रहस्य जानते थे। दूसरे वर्ग में मन और हृदय के ज्ञाता थे, तीसरे वर्ग में धर्म और दर्शन शास्त्र के ज्ञाता, चौथे वर्ग में दार्शनिक तथा पांचवें वर्ग में वे लोग थे, जो कि परीक्षणों तथा पर्यालोचनों पर आश्रित विज्ञान के जानने वाले थे। इन सम्पूर्ण वर्गों में अबुलफजल ने तीन जैन विद्वानों के नाम गिनाये हैं—

1. आचार्य श्री हीरविजय सूरि।
2. विजयसेन सूरि।
3. भानूचन्द्र उपाध्याय।

प्रथम वर्ग के 16वें स्थान पर हरिजी सूरि नाम अंकित है ये हरिजी सूरि को ही हीरविजय सूरि के नाम से जाना जाता है, (जिनका विवेचन हम अगले पृष्ठों में करेंगे।)

---

1. 'सूरीश्वर और सम्राट' विद्या-विजयजी हिन्दी अनुवादक कृष्णलाल वर्मा पृष्ठ 78।
2. आइने अकबरी एच. ब्लांचमेन द्वारा अनुदित पृष्ठ 607-617।

1. हीरविजय सूरिः—

सम्पूर्ण जैन साहित्य में इस घटना का विवरण मिलता है, कि अकबर राजमहल में बैठा मन्त्रियों से विचार-विमर्श कर रहा था, उसी समय सामने से **हीरविजयसूरिजी की जय हो** के नारे लगाता हुआ एक जुलूस निकला अकबर ने आश्चर्य से टोडरमल से इस बारे में पूछा तो उसे जबाव मिला कि यह जुलूस जैन धर्म वालों का है जिसमें चम्पा नाम की एक श्राविका सुन्दर वस्त्र धारणकर पालकी में बैठ भगवान के दर्शन के लिए मन्दिर में जा रही है। उसने 6 महीने के उपवास किये है जिनमें केवल गर्म जल पीने के सिवाय कुछ भी नहीं खाया और वह गर्म जल भी केवल दिन में ही पीती है। रात्रि में तो मुंह में कुछ भी नहीं डालती। उसके उपवास का यह 5वां मास हैं। आज जैन धर्म का कोई विशेष पर्व होने के कारण वह उत्सव के साथ मन्दिर जा रही है। बादशाह को भला इतनी कठोर तपस्या पर कैसे विश्वास आ सकता था अतः अपने सन्देह की पुष्टि के लिए अपने अनुचरों को पालकी ऊपर ले जाने की आज्ञा दी। बादशाह की आज्ञा से जैन समुदाय भयभीत होने लग गया लेकिन कर क्या सकता था? आखिर पालकी को ऊपर ले जाया गया। बादशाह ने कुतूहलता से चम्पा बहन की आकृति की परीक्षा की। यद्यपि उसके तेजस्वी मुख को देखकर तपस्या के विषय में काफी कुछ सत्यता प्रतीत होने पर भी उसकी पूरी परीक्षा करने के लिए एक मास तक अपने एकान्त महल में रहने की आज्ञा दी और अपने सेवकों को उसकी सारी दिनचर्या का बड़ी सावधानी से अवलोकन करने को कहा। चम्पा बहन के लिए एक मास निकालना कौन सी बड़ी बात थी? समय निकला, सेवकों की दृष्टि में उसका निर्मल आचरण सामने आया। सेवकों द्वारा जब बादशाह को चम्पा बहन के पवित्र आचरण का पता चलता तो बादशाह आश्चर्य चकित हो गया। उसने स्वयं चम्पा बहन से पूछा कि तुम इतनी कठोर तपस्या क्यों और किसके प्रभाव से करती हो? उसने जबाव दिया कि

तप आत्म कल्याण के करती हूँ बस यही से अकबर के मन में हीरविजयसूरि के दर्शनों की जिज्ञासा हुई।

अकबर ने गुजरात प्रदेश में रह चुके एतमादखां से सूरिजी के बारे में पूछा तो उसने जबाव दिया हां हुजूर जानता हूँ, वे एक सच्चे फकीर हैं, वे इक्का, गाड़ी, घोड़ा आदि किसी भी सवारी में नहीं बैठते हैं। वे हमेशा पैदल ही एक गांव से दूसरे गांव जाते हैं। पैसा नहीं रखते, औरतों से बिल्कुल दूर रहते हैं और अपना सारा समय खुदा की बन्दगी में और लोगों को धर्मोपदेश देने में गुजारते हैं।[1] इस तरह एतमादखां से सूरिजी की प्रशंसा सुनकर जैसे कोक पक्षी सूर्य को चाहते हैं ऐसे ही अकबर को हीरविजयसूरिजी से मिलने की बड़ी ही तमन्ना हुई।

अकबर ने स्वयं हीरविजयसूरिजी को एक विनती पत्र लिखा, एक आदेश पत्र गुजरात के सूबेदार साहब खां को भी लिखा कि सूरिजी को ससम्मान यहां लाया जावे और दो जैन श्रावकों को बुलाकर उनसे सूरिजी को विनीत पत्र लिखने को कहा। यह-पत्र देकर उसने दो मेवड़ाओं[2] (मोदी और कमाल) को गुजरात सूबेदार साहब खाँ के पास अहमदाबाद भेजा। साहबखाँ ने अहमदाबाद के प्रसिद्ध नेता जैन समाज के गृहस्थों को बुलवाया और उन्हें बादशाह का पत्र दिया तथा अपना पत्र पढ़कर सुनाया। अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए साहबखां ने कहां शहंशाह जब इतनी इज्जत के साथ श्री हीरविजयसूरिजी को बुला रहा है तब उन्हें जरूर जाना चाहिए तुम्हें भी खास तरह से उन्हें आगरा जाने के लिए अर्ज करना चाहिए। यह ऐसी इज्जत है कि जैसी आज तक

1. सूरीश्वर और सम्राट कृष्णलाल वर्मा पृष्ठ 81 पर।
2. इन मेवाड़ाओं के बारे में अबुलफजल ने लिखा है कि वे मेवाड़ के रहने वाले हैं और दौड़ने वाले के नाम से प्रसिद्ध है। जिस चीज की जरूरत होती है, वे बड़े दूर से उत्साह के साथ ले आते हैं। वे उत्तम जासूस है। वे बड़े-बड़े जटिल काम भी कर दिया करते हैं। ऐसे एक हजार है जो हर समय आज्ञा पोलने के लिए तत्पर रहते हैं। आइन-ए-अकबरी एच. ब्लींच मेन द्वारा अनुदित पृष्ठ 262।

बादशाह की तरफ से किसी को भी नहीं मिली है। सूरीश्वरजी के वहां जाने से तुम्हारे धर्म का गौरव बढ़ेगा और तुम्हारे यश में भी अभिवृद्धि होगी। इतना ही नहीं हीरविजयसूरि की शिष्य परम्परा के लिए भी उनका यह प्राथमिक प्रवेश बहुत ही लाभदायक रहेगा। इसलिए किसी तरह की हाँ ना किये बिना हीरविजयसूरि को बादशाह के पास जाने के लिए आग्रह के साथ विनती करों। मुझे आशा है कि वे जाकर बादशाह पर अपना प्रभाव डालेंगे और बादशाह से अच्छे-अच्छे काम करवायेंगे।[1] अहमदाबाद के श्रावक साहबखां की बात सुनकर और उसे यह आश्वासन देकर कि सूरिजी को हम गान्धार से यहां ले जाते हैं, चले गये। अहमदाबाद के श्री संघ ने खम्भात के श्रीसंघ को सूचना दी। खम्भात के श्रीसंघ ने अपनी तरफ से संघवी उदयकरण, पारिख राजियां, राजा श्रीमल्ल[2] आदि को गन्धार भेजा। खम्भात, अहमदाबाद और गन्धार के मुख्य-मुख्य श्रावक तथा सूरिजी, विमल हर्ष उपाध्याय और अन्य प्रधान मुनि विचार विमर्श के लिए इकट्ठे हुए। अहमदाबाद के श्रीसंघ ने बादशाह का पत्र जो साहबखां के नाम आया था और आगरे के जैन श्रीसंघ का पत्र सूरिजी को दिया एवं सभी समाचारों से अवगत कराया।

सभी एकत्रित श्रावक, आचार्य एवं मुनियों के बीच बादशाह के द्वारा भेजे गये हीरविजयसूरिजी के आमन्त्रण पर विचार-विमर्श प्रारम्भ हुआ कि सूरिजी को बादशाह के निमन्त्रण पर फतेहपुर सीकरी स्वयं जाना उचित है या बादशाह को धर्मोपदेश लाभ के लिए स्वयं यही आना चाहिये। किसी भी विषय पर सभी की सम्मति एक हो, यह बात न आज तक हुई है, न होती है और न ही होगी। यहीं समस्या इस समय भी खड़ी थी सभी ने अपने-अपने मत दिये विभिन्न मतभेद होने पर सूरिजी ने अपना निर्णायक मत इस प्रकार दिया—

---

1. सूरीश्वर और सम्राट कृष्णलाल वर्मा द्वारा अनुदित पृष्ठ 86-87।
2. वही पृष्ठ 87

महानुभावों मैंने अब तक आप सबके विचार सुने। जहाँ तक मैं समझता हूं, अपने विचार प्रकट करने में किसी का आशय खराब नहीं है। सबने लाभ के ध्येय को सामने रखकर ही अपने विचार प्रकट करता हूँ।

अपने पूर्वाचार्यों ने मान अपमान की कुछ भी परवाह न कर राज दरबार में अपना पैर जमाया था और राजाओं को प्रतिबोध दिया था, इतना ही क्यों? उनसे शासन हित के बड़े-बड़े कार्य भी करवाये थे। इस बात को हरेक जानता है कि आर्य सूहस्ती सूरि जी ने सम्प्रति राजा को बप्पभट्टी ने आमराजा को, सिद्धसेन दिवाकर ने विक्रमादित्य राजा को और कलिकाल सर्वज्ञ प्रभु श्री हेमचन्द्राचार्य ने कुमारपाल राजा को, इस तरह अनेक पूर्वाचार्यों ने अपने राजाओं को प्रतिबोध किया था। उसी का परिणाम है कि इस समय भी हम जैन धर्म का प्रभाव देखते हैं भाईयों, यद्यपि मुझमें उन महान आचार्यों के समान शक्ति नहीं है मैं तो केवल उन पूज्य पुरुषों की पदधूलि के समान हूँ तथापि उन पूज्य पुरुषों के पुण्य प्रताप से **यावद बुद्धि बलोदय** इस नियम के अनुसार शासन सेवा के लिए जितना हो सके उतना प्रयत्न करने को मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। अपने पूज्य पुरुषों को तो राज्य दरबार में प्रवेश करने में तो बहुत सी कठिनाईयां झेलनी पड़ी थीं लेकिन हमें तो सम्राट स्वयं बुला रहा है। इसलिए उसके आमंत्रण को अस्वीकार करना मुझे अनुचित जान पड़ता है। तुम इस बात को भली प्रकार समझते हो कि हजारों बल्कि लाखों मनुष्यों को उपदेश देने में जो लाभ होता है। उसकी अपेक्षा कई गुना ज्यादा लाभ एक राजा को, सम्राट को उपदेश देने में है कारण गुरु की कृपा से सम्राट के हृदय में यदि एक बात भी बैठ जाती है तो हजारों ही नहीं बल्कि लाखों मनुष्य उसका अनुसरण करने लग जाते हैं। यह ख्याल भी ठीक नहीं है कि जिसको गरज होगी वह हमारे यहाँ आयेगा, यह विचार शासन के लिए हितकर नहीं है। संसार में ऐसे लोग बहुत ही कम हैं जो अपने आप धर्म करते हैं उत्तमोत्तम कार्य करते हैं। धर्म इस समय लंगड़ा है,

लोगों को समझा-समझाकर युक्तियों से धर्म साधन की उपयोगिता उनके हृदयों में जमा जमाकर, यदि उनसे धर्म कार्य कराये जाते हैं तो वे करते हैं। इसलिए हमें शासन सेवा की भावना को सामने रखकर प्रत्येक कार्य करना चाहिए। शासन सेवा के लिए हमें जहाँ जाना पड़े वहीं निःसंकोच होकर जाना चाहिए। परमात्मा महावीर के अकाट्य सिद्धान्तों का घर-घर जाकर प्रचार किया जायेगा, तभी वास्तविक शासन सेवा होगी। **सदी जींवकरू** शासन रसी (संसार के समस्त जीवों को शासन के रसिक बनाऊं) इस भावना का मूल उद्देश्य क्या है? हर तरह से मनुष्यों की धर्म का, अहिंसा धर्म का अनुरागी बनाने का प्रयत्न करना इसलिए तुम लोग अन्यान्य प्रकार के विचार छोड़कर मुझे अकबर के पास जाने की सम्मति दो, यही मेरी इच्छा है।[1]

सन्तों महात्माओं से विचार विमर्श करने के उपरान्त जैन मुनि हीरविजय सूरि ने बादशाह सलामत के दरबार में जाना स्वीकार किया। यह भी परिलक्षित होता है कि मुर्धन्य विद्वान सन्त स्वेच्छाचारी नहीं थे यद्यपि वे अपनी रुचि अनुसार ही राजदरबार गये किन्तु जैन संघ में विचार विमर्श करने के उपरान्त अपना मत दिया।

(जैन सन्तों पर राजाश्रय का पूर्वकाल से ही प्रभाव मिलता है यहां भी सन्त मुनि धर्म के प्रसार के उद्देश्य से राजा के निमन्त्रण को स्वीकार करते हैं।)

सूरिजी के उपदेश को सुनकर सभी ने उन्हें हर्ष पूर्वक जाने की अनुमति दे दी।

सूरिजी मार्ग शीर्ष कृष्णा सप्तमी सम्वत् (1638 (सन् 1581) को गन्धार से विहार कर अहमदाबाद आये। अहमदाबाद पहुंचने पर वहां के सूबेदार साहब खां के सम्राट द्वारा लिखे गये पत्र के आदेशानुसार उन्हें वे सभी चीजें भेंट करनी चाही लेकिन सूरिजी ने जैन धर्म के

---

1. सूरीश्वर और सम्राट कृष्णलाल वर्मा द्वारा अनुदित पृष्ठ 90-91।

अपरिग्रह व्रत के नियमानुसार सभी कुछ ग्रहण करने से इन्कार किया और कुछ दिन अहमदाबाद में रुककर फतहपुर सीकरी की ओर विहार किया। फतेहपुर सीकरी पहुंचने से पहले सूरिजी सांगानेर के उपाश्रय में ठहरे। उनके साथ के प्रमुख मुनियों ने सूरिजी को वहीं छोड़कर बादशाह का मन्तव्य जानने के लिए सीकरी की ओर विहार किया और वहाँ पहुंचकर यह सन्देश दिया कि सूरिजी बादशाह के आमन्त्रण पर सांगानेर पधार चुके हैं। बादशाह ने मुनियों का स्वागत कर उनके साधु-स्वभाव एवं त्यागी होने का कारण पूछा। यथेष्ठ उत्तर मिलने पर बादशाह सन्तुष्ट हुआ और उनके गुरु हीरविजयसूरिजी से मिलने की इच्छा और भी तीव्र हो गई। बादशाह का मन्तव्य जानकर मुनियों ने कुछ श्रावकों को सूरिजी के पास भेजा कि बादशाह सूरिजी के दर्शन और धर्मोपदेश सुनने के लिए चातक पक्षी की तरह आतुर है कोई अन्य कार्य नहीं है। ज्येष्ठ सुदी तेरस सम्वत् 1639 (सन् 1582) को सूरिजी फतेहपुर सीकरी पहुँचे। जब सूरिजी सिंह द्वार पर थे अबुलफजल ने बादशाह को यह शुभ समाचार सुनाया कि अभी तक आप जिनसे मिलने की उत्कण्ठा में थे, वे आज पधार चुके हैं। लेकिन शायद कुछ कार्य व्यवस्था या अन्य किसी कारण से अकबर ने उस समय सूरिजी से भेंट करने में असमर्थता जाहिर की। उस दिन की सूरिजी की सारी व्यवस्था की जिम्मेदारी अबुलफजल को सौंप दी गई।

यहाँ एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जिनसे मिलने के लिए अकबर चातक पक्षी की तरह आतुर था वहीं जब फतेहपुर में सिंह द्वार तक आ जाते हैं तो बादशाह कार्य व्यस्तता का बहाना कर मिलने से इन्कार कर देता है। आखिर ऐसा क्या कारण हो सकता है? ऐसा लगता है कि यह बादशाह के मदिरा व्यसन का परिणाम था क्योंकि इसी व्यसन के कारण अनेक अविवेकी व्यवहार हो जाते हैं और बादशाह में यह दुर्गुण था कि जब उसे मदिरापान की इच्छा होती थी

तब वह महत्त्वपूर्ण कार्यों को छोड़ देता था, यहाँ तक कि चाहे कितनी भी ऊँची श्रेणी के मनुष्य को मिलने के लिए बुलाया होता तो उससे भी न मिलकर अपनी शराब पीने की इच्छा को पूर्ण करता था। इसलिए उस दिन बादशाह सूरिजी से न मिल सके। स्मिथ ने लिखा है– **बादशाह को उनसे (हीरविजयसूरिजी से)** वार्तालाप करने का अबकाश मिला तब तक वे अबुलफजल के पास बैठाये गये थे।[1]

भव्यानन्दजी का कहना है अबुलफजल ने सूरिजी से कुशल क्षेम पूछने के बाद धर्म सम्बन्धी अनेक बातें पूछी। कुरान और खुदा के विषय में नाना प्रकार के जबाव सवाल किया जिनका उत्तर सूरिजी ने बड़ी गम्भीरता से युक्ति संगत प्रमाणों द्वारा खण्डन-मंडन करते हुए दिया। सूरिजी के विचारों से अबुलफजल बहुत प्रभावित हुआ[2] भानुचन्द्र गणिचारित से भी इसी बात का विवरण मिलता है कि अकबर से पहले सूरिजी की भेंट अबुलफजल से हुई। **मृतों का पुनरुत्थान** और **मुक्ति** इन दो प्रश्नों पर दोनों में चर्चा हुई। सूरिजी ने ईश्वर का वास्तविक स्वरूप बताया और कहा कि सुख दुःख का देने वाला ईश्वर नहीं बल्कि जीव में कर्म है। अबुलफजल सूरिजी के विद्वतापूर्ण तर्कों से बहुत प्रभावित हुआ।[3]

बादशाह ने अपने काम से निवृत्त हो दरबार में आते ही सूरिजी को अबुलफजल द्वारा बुलवाया। सूरिजी अपने तेरह साधुओं के साथ दरबार में पधारे। अद्‌भुत फकीर के रूप में आते हुए गुरूदेव को देखते ही बादशाह ने सविनय सिर झुकाकर नमन पूर्वक शिष्टाचार के साथ गुरुराज के पीछे अपने दरबार में जाने के लिए कदम उठाया। महल में जाने पर बादशाह ने रत्नजड़ित सिंहासन पर सूरिजी से बैठने की

1. "The weary traveller was received with all the pomp of imperial pageantry, and was made over to the care of Abul Fazl until the sovereign found leisure to converse with him."
2. जगदगुरु हीर-मुमुक्ष भव्यानन्दजी पृष्ठ - 52।
3. भानुचन्द्र गणिचरित भूमि का लेखक अगरचन्द्र भंवरलाल नाहटा पृष्ठ 6।

प्रार्थना की इस पर सूरिजी ने कहा कि प्रायः इनके नीचे कोई चींटी आदि सूक्ष्म जीव हो तो वजन से मर न जाये, इसलिए जैन शास्त्रों में केवली सर्वज्ञों ने अहिंसावादियों के लिए वस्त्राच्छादित जगह पर पांव रखने की भी मनाही की है। हमारा आचार है कि चलना हो, बैठना हो तो अपनी नजर से देखकर चलना बैठना जिससे किसी जीव को दुःख न हो। धर्मशास्त्र भी फरमाते हैं **दृष्टि पुतं न्यसेत पादम्**

मनुस्मृति में भी लिखा है कि **शरीर पीड़ित होने पर भी दिन में व रात्रि में जीवों की रक्षा के लिए सदा भूमि देखकर चलना चाहिए।**[1]

बादशाह सूरिजी की जीवों के प्रति ऐसा दया देखकर आश्चर्य चकित हुआ और मन ही मन हंसा भी कि यहां रोज सफाई होने पर इसके नीचे जीव कैसे आ सकते हैं? ऐसा विचार करते ही गलीचे को एक तरफ से थोड़ा उठाया तो बहुत सी चींटियां दिखाई दी उन्हें देखते ही बादशाह घोर आश्चर्यचकित रह गया। उसके बाद स्वर्णमयी कुर्सी पर बैठने के लिए आग्रह किया तो सूरिजी उत्तर दिया कि त्यागियों के लिए धातु का स्पर्श करना सख्त मना है। अब बादशाह असमंजस में पड़ गया कि सूरिजी को कहाँ बिठाए कि इतने में सूरिजी स्वयं ही अपना ऊनी आसन बिछाकर शिष्यों सहित बैठ गये। बादशाह भी सूरिजी के सामने ही यथोचित आसन पर बैठ गया। कुशलक्षेम पूछने के पश्चात् बादशाह द्वारा पूछे जाने पर सूरिजी ने जैन धर्म के बड़े-बड़े तीर्थों के नाम शत्रुन्जय, गिरनार, आबू, सम्मेत शिखर और अष्टापद आदि बताये अब अकबर ने जिस उद्देश्य से सूरिजी को बुलाया था यानि धर्मोपदेश के लिए, उन्हें चित्रशाला के कमरे में ले गया। सामान्य उपदेश के बाद बादशाह ने सूरिजी से ईश्वर और खुदा में भेद पूछा। सूरिजी ने बताया कि ईश्वर और खुदा में नाम मात्र के अलावा वास्तविक कोई भेद नहीं

---

1. संरक्षणार्थ जन्तूनां रात्रावहनि वा सदा।
   शरीरस्यात्पये चैव समीक्ष्य वसुधांतरेत।।
   मनुस्मृति संस्कृत टीका पं. रामेश्वर भट्ट अध्याय 6 श्लोक 68।

है। और वास्तव में देखा जाय तो यह भेद भी जीवों के कल्याण के लिए ही है क्योंकि 'विचित्र रूपा खलु चित्त वृत्तयः' अर्थात् जीवों की चित्तवृत्तियां अनेक प्रकार की है। कोई किसी नाम से खुश रहता है तो कोई किसी नाम से। इसी तरह महापुरुषों के भी अनेक नाम हैं। देव, महादेव, शिव, शंकर, हरि, ब्रह्मा, परमेष्टी, स्वयंभू, त्रिकासविद, भगवान, तीर्थंकर, केवली, जिनेश्वर, अशरीरी, वीतराग आदि ईश्वर के अनेक नाम है इन नामों के अर्थ में तो किसी को विवाद नहीं सिर्फ नामों में ही विवाद है। ईश्वर 18 दूषणों से रहित होता है, प्रणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्यांख्यान पैशुन्य, रति अरति, परपरिवाद, मायामृषावाद, मिथ्यात्वशल्य, इन अठारह दूषणों में से एक भी दूषण होने पर उसे ईश्वर नहीं कहा जायेगा। अन्त में सूरिजी ने ईश्वर का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार बताया कि—

जिसमें क्लेश उत्पन्न करने वाला राग नहीं है शांति रूपी काष्ट को जलाने वाली अग्नि के समान द्वेष नहीं है। शुद्ध सम्यग् ज्ञान को नाश करने वाला और अशुभ आचरणों को बढ़ाने वाला मोह नहीं है और तीन लोक में जो महिमामय है वहीं महादेव है, जो सर्वज्ञ है, शाश्वत सुख का भोक्ता है और जिसने सब तरह के कर्मों को क्षय करके मुक्ति पाई है तथा परमात्म पद को प्राप्त किया है वहीं महादेव अथवा ईश्वर है। दूसरे शब्दों में कहें तो ईश्वर वह होता है जो जन्म, और मृत्यु से रहित होता है। जिसके रूप, रस गन्ध, और स्पर्श नहीं होते है और जो अनन्त सुख का उपयोग करता है।[1]

क्रमशः

---

1. सूरिश्वर और सम्राट-कृष्णलाल वर्मा द्वारा अनुदित पृष्ठ 116-117।

कुवलय माला

श्री केवल मुनि

साहसी बालक :

जम्बूद्वीप के दक्षिण भरतक्षेत्र में विनीता (अयोध्या) नगरी अति समृद्ध और वैभवपूर्ण थी। वह वैताढ्यपर्वत के दक्षिण में गंगा और सिंधु दोनों महानदियों के मध्य बने भूमि क्षेत्र में बसी थी। नगरी में बने ऊँचे भवन उसके सभी प्रकार से उन्नत होने के परिचायक थे। नगर के राजमार्ग चौड़े और विस्तीर्ण थे। वीथिकाएँ भी सुरुचिपूर्ण ढंग से बनाई गई थीं। सम्पूर्ण नगर जनरव से गूँजता रहता था। स्थान-स्थान पर बने वापिकाएँ, उपवन और तड़ाग इसकी रमणीयता में चार चाँद लगा रहे थे।

विनीता में राजा दृढ़वर्म राज्य करता था। दृढ़वर्म शूरवीर, सरल और मधुरभाषी, दयालु, शरणागतवत्सल एवं सुपात्र-दान देनेवाला था। राजा ने सभी कलाएँ और विद्याएँ सीखी थीं, पर झूठ-कपट नहीं सीखा। गुणों का लोभी था, किन्तु धन का नहीं; सुभाषितों का रसिक था किन्तु पाप-कर्मों का नहीं, वह कीर्ति-प्राप्ति में असन्तोषी था किन्तु स्वदार-सन्तोषी। उसकी पटरानी प्रियंगुश्यामा लक्ष्मी के समान भाग्यशालिनी, शची से भी अधिक सुन्दर और सरस्वती से भी अधिक बुद्धिमती थी। राजा और रानी दोनों में प्रगाढ़ स्नेह था और दोनों ही एक दूसरे को समर्पित थे।

एक दिन राजा-रानी दोनों सभामण्डल में बैठे थे। मंत्री, सुभट, दरबारी आदि अनेक सभ्य और शिष्ट-जनों से सभा खचाखच भरी थी। तभी प्रतिहार ने प्रवेश करके उद्घोष किया—

महाराज की जय हो।

महाराज दृढ़धर्म की प्रश्नवाचक दृष्टि उठी। प्रतिहार ने कर जोड़कर विनती की—

देव! शबर सेनापति के पुत्र सुषण दर्शनों की आज्ञा चाहते हैं।

आने दो। महाराज ने आज्ञा दी।

जैसी आपकी आज्ञा। सिर झुकाकर प्रतिहार उल्टे पैरों चला गया और सुषेण ने आकर महाराज का अभिवादन किया।

सुषेण का मुख प्रसन्नता से चमक रहा था। उसका बलिष्ठ शरीर क्षात्र-तेज से दमक रहा था। अभिवादन स्वीकार करके महाराज ने उचित आसन की ओर संकेत किया। सुषेण इस पर बैठ गया। महाराज दृढ़धर्म ने मधुर स्वर में पूछा—

कहो कुमार! कुशल तो हो?

आपके चरणों की कृपा से सर्वत्र कुशलता ही है, महाराज!

मालवनरेश का क्या हुआ? अब राजा मतलब की बात पर आया।

आपकी विजय-पताका और यशकीर्ति का डंका बज गया, पृथ्वीनाथ! सुषेण के मुख वीरतापूर्ण प्रसन्नता चमकने लगी।

इतने से उत्तर से राजा दृढ़धर्म को सन्तोष न हुआ। सुषेण के चमकते हुए मुख से उन्होंने उसके प्रवेश करते ही विजयश्री का अनुमान तो लगा लिया था किन्तु वे मालव-नरेश के साथ हुई घटना को विस्तार से जानना चाहते थे। कुछ दिन पहले उन्होंने ही तो उसे मालव-नरेश के विरुद्ध भेजा था। उन्होंने पुनः प्रश्न किया—

सुषेण! विस्तार से बताओ। वह दुर्मद मालवपति समझाने से मान गया या युद्ध ही करना पड़ा।

सुषेण ने विनम्र स्वर में बताया—

नहीं महाराज! वह बातों से नहीं माना, युद्ध ही करना पड़ा। आपकी आज्ञा से मैं चतुरंगिनी सेना लेकर वहाँ गया था। दूत भेजकर समझाने की चेष्टा की। आपकी इच्छानुसार मैं भी हिंसक युद्ध से बचना चाहता था। मैंने बहुत प्रयास किया कि नर-संहार न हो, किन्तु वह किसी तरह भी न माना तो युद्ध करना ही पड़ा। घोर युद्ध हुआ। हमारे सुभटों ने शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये। उनकी सेना भंग हो गई। राजा का छत्र

टूट गया। उसका रथ भंग हो गया और वह न जाने कहाँ गायब हो गया। इसके पश्चात् हमारी विजयी सेना ने नगर में प्रवेश किया।

राजा दृढ़धर्म अपनी सेना की शौर्य कथा सुनकर प्रसन्न हो रहा था। सभी सभासदों के मस्तक भी गर्व से ऊँचे उठ गए थे। सुषेण की बातों को सभी कान लगाकर सुन रहे थे। बीच में ही महाराज ने टोका-

विजयी सेना ने नगर में प्रवेश करके प्रजा का उत्पीड़न भी किया क्या?

सुषेण राजा दृढ़धर्म की दयालुता और प्रजादुखकातरता से परिचित था। तुरन्त बोला—

नहीं पृथ्वीनाथ! हमारे सुभट रणभूमि में ही शस्त्रधारी शत्रुओं पर वार करते हैं; निरीह प्रजा पर नहीं। प्रजा का हमने कोई उत्पीड़न नहीं किया। शान्तिप्रिय नागरिकों को तनिक भी कष्ट नहीं दिया, सभी को अभय किया। जिसने स्वेच्छा से भेंट दी वहीं स्वीकार की और वह भी उसका सम्मान रखने के लिए।

उचित ही किया। किसी को कष्ट न देना, अनार्थों-असहायी की रक्षा करना—यहीं विजेता पुरुष का धर्म है। महाराज ने सन्तोष प्रगट करते हुए कहा।

आपकी यह भावना मेरे जीवन की प्रेरणा है, महाराज! मैं भी शत्रुराजा के पाँच वर्षीय अबोध पुत्र को अनाथ समझकर अपने ही साथ ले आया हूँ। जिससे अपकी छत्रछाया में रहकर वह योग्य और कुशल बन सके।—सुषेण ने बताया।

अबोध शिशु का आगमन सुनकर दयालु दृढ़धर्म का हृदय द्रवित हो गया; उसने तुरन्त पूछा—

कहाँ है मालवपति का लाल?

बाहर है, आपकी आज्ञा हो तो..........,

इसमें आज्ञा लेने की क्या आवश्यकता थी? मालवपति का पुत्र हमारे विशेष स्नेह का अधिकारी है, तुरन्त बुलाओ।—राजा ने सुषेण की बात बीच में ही काटकर कहा।

राजा के संकेत पर मालव-नरेश के पाँच वर्षीय अबोध बालक ने सभा में प्रवेश किया। उदास-मुख बालक सभा पर दृष्टि डालता हुआ, समहता हुआ मन्द गति से राजा के पास पहुँचा। पितृ-वियोग से बालक उदास और व्याकुल तो था, किन्तु उसके नेत्रों में दीनता नहीं थी। बालक होने पर भी उसमें क्षत्रियोचित दर्प और आत्म विश्वास था।

राजा दृढ़धर्म ने बालक को अंक में भर लिया और स्नेहपूर्वक उसके सिर पर हाथ फेरते हुए हृदय के उद्‌गार व्यक्त लिए—

अवश्य ही इसका पिता वज्र से भी अधिक कठोर हृदय वाला है जो इसे असहाय छोड़ भाग गया।

अब तक रानी प्रियंगुश्यामा चुपचाप बैठी सभा की बातें सुन रही थी। उसे राजनीति और युद्ध की बातों में कोई विशेष रुचि न थी, किन्तु बालक के प्रवेश करते ही उसकी दृष्टि उस पर जम गई। कैसा भोला, सलौना और सुन्दर कुमार है! वह मन ही मन बालक के प्रति आकर्षित थी और उसकी उदास मुख-मुद्रा पर द्रवित। राजा के शब्दों ने उसका विचार प्रवाह तोड़ दिया और अनायास ही रानी के मुख से निकल पड़ा-

उस भाग्यशालिनी माता के हृदय को क्या कहा जाय जो इसके वियोग में भी शरीर धारण किये हुए है।

बालक की उदासी और राजा-रानी के इन दयार्द्र वचनों ने सभा का वातावरण बोझिल बना दिया। उदास सन्नाटे को प्रधान अमात्य ने तोड़ा—

भाग्य की लीला बड़ी विचित्र है, राजन्! किसी को सुख मिलता है और किसी को दुःख। किसी का अबोध पुत्र बिछुड़ जाता है तो कोई बालक अपने माता-पिता से अलग हो जाता है। शुभयोग और पुण्य के उदय में बिछुड़े हुए फिर मिल जाते हैं। यहीं संसार है और यहीं संसार की गति। मिलता-बिछुड़ना तो ....।

मंत्री अपनी बात पूरी भी न कर पाया कि बालक की रुलाई फूट पड़ी। उसका रुदन स्वर ऊँचा हो गया था। अपरिचित लोग और राजा के स्नेह ने बालक के हृदय में दबे दुःख के बाँध का द्वार खोल दिया था।

बालक के रुदन से राजा दृढ़धर्म की आँखों में भी आँसू भर आये। उसने मन में विचार किया— अहो! इस बालक को कितना दारुण दुःख है। किन्तु बालक का रुदन जारी था। प्रकट में सांत्वना देते हुए राजा बालक से बोला—

वत्स! हृदय में शोक मत करो। रोओ मत। हमारे साथ प्रसन्नता से रहो। हम तुम्हें अच्छी-अच्छी चीजें देंगे।

राजा दृढ़धर्म ने बालक को भाँति-भाँति की सान्त्वना और मधुर वचनों से आश्वत किया। बालक का रोना बन्द हुआ। राजा ने अपने उत्तरीय से उसका मुख पोंछा। इतने में सेवक ने झारी में जल लाकर दिया। राजा ने अपने हाथ से उसका मुख धोया और अपने ही उत्तरीय से साफ कर दिया।

बालक के रुदन से राजा-रानी और सभी सभासदों की आँखों में आँसू भर आये थे। सभी की तो सहानुभूति होती है अबोध बालक के प्रति। उन सबने भी अपने मुँह धोए और स्वस्थ होकर यथास्थान बैठ गए। बालक मौन होकर सबकी ओर देख रहा था। उसकी दृष्टि कभी इस सभासद पर पड़ती तो कभी उस पर।

राजा के हृदय में बालक बस गया था। उसने मंत्रियों से पूछा-

मंत्रियों! तुम लोग तो बुद्धि निधान हो। बताओ इस बालक के रोने का कारण क्या है?

मंत्री तो राजा की प्रत्येक बात का उत्तर देने को उत्सुक रहते ही हैं। यहीं तो अवसर होता है अपनी बुद्धिमत्ता और कुशलता का परिचय देने का। एक मंत्री ने उत्तर दिया—

राजन! इसमें जानने योग्य ही क्या है? माता-पिता के वियोग से दुखी होकर ही यह बालक रोया है।

आपके प्यार-दुलार से इसे अपने पिता की स्मृति हो आई। दूसरे मंत्री ने अपनी बुद्धिमानी प्रदर्शित की।

अपरिचित स्थान और व्यक्तियों को देखकर यह घबरा गया। तीसरे ने अपनी योग्यता दिखाई।

इसी प्रकार सभी मंत्रियों ने अपनी-अपनी बुद्धि व कल्पना के अनुसार उत्तर दिए और बालक के रोने के विभिन्न कारण बताए किन्तु राजा को किसी की बात से संतोष न हुआ। उसने उस बालक से ही पूछा—

वत्स! निर्भय होकर बताओ कि तुम किसलिये रोये?

बालक ने गम्भीरतापूर्वक कहा—

सूर्य समान प्रतापी नरेश का पुत्र होकर भी मुझे शत्रु के अंक में बैठना पड़ रहा है। मैं अपने पिता के शत्रु का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। अपनी इसी असमर्थता पर मुझे क्रोध आया और क्रोध का आवेग रुलाई बनकर फूट पड़ा।

यह था अबोध बालक का क्षत्रियोचित उत्तर। राजा दृढ़धर्म मुग्ध हो गया। उसके मुँह से निकला—

आश्चर्य! यह बालक कितना स्वाभिमानी और निर्भय है? कितनी दृढ़ वाणी में बोलता है? इसका बुद्धि-विलास और वचन-विलास अनुपम है? सचमुच यह क्षात्रतेज से विभूषित और आश्चर्यकारी है।

बालक की प्रशंसा करते हुए राजा ने मंत्रियों की ओर देखा। एक मंत्री ने तुरन्त ही बात लपकी—

इसमें आश्चर्य ही क्या है, नरनाथ! अग्नि सदैव ही उष्ण होती है और क्षत्रिय निर्भय! क्षत्रिय बालक हो या युवा; वृद्ध हो अथवा मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ— उसकी निर्भीकता, तेज, स्वत्व, पौरुष और साहस कभी क्षीण नहीं होता।

सत्य कहते हो, मंत्री! राजा दृढ़वर्म ने बात समाप्त कर दी। बालक से पूछा—

वत्स! तुम्हारा नाम क्या है?

महेन्द्रकुमार— बालक ने गर्व से मस्तक ऊँचा उठाकर अपना नाम बता दिया।

वीर को वीर से प्रेम होता ही है और और यदि वह बालक हो तो प्रेम और भी बढ़ जाता है। राजा दृढ़वर्म भी वीर-बालक महेन्द्रकुमार से बहुत प्रसन्न हुआ और स्नेहपूर्वक उसकी पीठ पर हाथ फेरता हुआ बोला-

वत्स! शत्रुता की बात हृदय में मत रखो। मुझे विवश होकर तुम्हारे पिता के विरुद्ध शस्त्र उठाने पड़े। तुम तो मुझे अपने प्राणों के समान ही प्यारे हो। मेरा तुमसे और मालव की प्रजा से कोई शत्रु भाव नहीं है। बताओ क्या मेरे सैनिकों ने मालव प्रजा तथा मालव पति के अन्तःपुर का उत्पीड़न किया था?

नहीं बिल्कुल नहीं! बालक ने नम्र स्वर में कहा।

वत्स महेन्द्र ! क्षत्रियधर्म का पालन करते हुए उद्दण्डता का दण्ड तो देना ही पड़ता है। तुमसे मेरी कोई शत्रुता नहीं है। तुम बीती बातों को भूल जाओ और मेरे घर को अपना ही मानकर प्रसन्नतापूर्वक रहो। तुम्हारे पिता भी आज से मेरे मित्र है और तुम तो मेरे पुत्र समान हो ही।

बालक महेन्द्रकुमार को राजा दृढ़वर्म के शब्दों से सांत्वना मिली। उसके हृदय से शत्रुता का कलुष धुल गया। अभिमान के स्थान पर विनम्रता आ गई। उसने उठकर शिष्टतापूर्वक सभी गुरुजनों को प्रणाम किया। बालक महेन्द्र के इस आचरण ने सबका मन मोह लिया। रानी प्रियंगुश्यामा ने तो उसे अंक में लिपटा ही लिया। उसका हृदय कसक उठा। राजा दढ़वर्म ने मंत्रियों से कहा—

इस बालक का लालन-पालन ऐसे स्नेहपूर्ण वातावरण में हो कि इसे कभी अपने पिता को स्मृति ही न आए।

मंत्रियों ने राजा की आज्ञा स्वीकार की। राजा ने अपने हाथ से कुमार महेन्द्र को पान का बीड़ा खिलाकर सम्मानित किया और रानी की डबडबाई आँखों की ओर देखता हुआ उठ खड़ा हुआ।

राजा के उठते ही रानी भी उठ खड़ी हुई और सभा विसर्जित हो गई।

जन्म; कुवलयचन्द्र का :

एक दिन राजा दृढ़वर्म अपने सभासदों और सभ्यजनों से सुशोभित सभामण्डप में बैठा था। उसी समय रानी प्रियंगुश्यामा की अंतरंग दासी सुमंगला आई और राजा के कान में कुछ कहकर चली गई। राजा के मुख पर चिन्ता की रेखाएं उभर आयीं। उसने तत्काल सभा विसर्जित की और अन्तःपुर की ओर चल दिया।

राजा चलता जाता था और मन ही मन सोचता भी जाता था--रानी प्रियंगुश्यामा ने साजश्रृंगार उतार दिया। भोजन भी त्याग दिया और म्लान-मुख शय्या पर जा लेटी है। क्या किसी ने उसका अपमान किया है? या मुझसे ही कोई भूल हुई है? राजा अपने पिछले व्यवहार पर जितना भी सोचता, उसे अपनी कोई त्रुटि नहीं दिखाई देती। शंकित हृदय दृढ़वर्म-ने अन्तःपुर में प्रवेश किया; किन्तु रानी कहीं भी दिखाई न दी। एक दासी से पूछा—

देवी कहाँ हैं?

दासी ने उदास स्वर में बताया—

कोपगृह में।

दृढ़वर्म का दृढ़ हृदय धड़क गया। अधीरतापूर्वक कोपगृह में पहुँचा। रानी प्रियंगुश्यामा शय्या पर पड़ी-पड़ी दीर्घ निःश्वासें ले रही थी। उसके केश खुले हुए थे, शरीर पर मात्र एक वस्त्र था, होंठ सूख गए थे और वह शून्य में टकटकी लगाए देख रही थी। दृढ़वर्म का हृदय भर आया। उसने स्नेहपूर्वक रानी का स्पर्श किया। रानी ने दृष्टि घुमाकर राजा की ओर देखा और आँखें मूँद लीं।

मधुर स्वर में राजा ने कहा—

देवी! स्त्री के कोप के पाँच कारण होते हैं—सास-ससुर की अकारण ही प्रतारणा, सौतों के दुर्वचन, कुटुम्बियों और परिवारीजनों व्यंगबाण, दास-दासियों की अविनय और पति-प्रेम में कमी। इनमें से किस कारण से तुम कुपित हुई हो?

रानी प्रियंगुश्यामा चुप रही; न उसने कोई जबाव दिया और न आँखें ही खोलीं। राजा अधीर हो गया; उसने कातर स्वर में कहा—

कुछ तो बोलो, रानी ! क्या मुझसे कोई शिकायत है?

पति का कातर स्वर सुनकर रानी विह्वल हो उठी। उसने आँसू बहाते हुए कहा—

नहीं नाथ! मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं।

फिर इस कोप का कारण?

मेरी मूर्खता; आपको अकारण ही दुःखी किया।

रानी के ये शब्द राजा के दिल में पैठ गए। आलिंगन में लेकर राजा बोला—

नहीं प्रिये! तुम कुछ छिपा रही हो। तुम्हें कोई ऐसा दारुण दुःख है जिसे तुम भीतर-ही-भीतर पी जाना चाहती हो।

प्राणनाथ के इन वचनों को सुनते ही रानी की रुलाई फूट पड़ी। उसके नेत्रों से गंगा-जमुना बहने लगी। राजा के बहुत सांत्वना देने पर जब रानी का रुदन बन्द हुआ तो राजा ने पुनः पूछा—

अपने हृदय का दुःख मुझे न बताओगी, तो और किससे कहोगी? साफ-साफ कहो तुम्हें क्या कष्ट है, क्या पीड़ा है, कौन सा अभाव है?

आपकी कृपा से मुझे सब सुख प्राप्त है किन्तु मैं मन्दभागिनी...।

तुरन्त राजा ने रानी के मुँह पर हाथ रख दिया। उसका कलेजा मुँह को आ गया। विह्वल होकर बोला—

ऐसा न कहो प्रिये! भाग्य को दोष मत दो।

तो और किसे दूं? मैं माँ न बन सकी।

पिता न बनने का दुःख तो राजा को भी बहुत था। पुत्र का अभाव उसे भी रात-दिन खटकता रहता था। उसकी भी आँखें गीली हो आई।

क्रमशः

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1.	Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:		
	Vol - 1 (satakas 1-2)	Price : Rs.	150.00
	Vol - 2 (satakas 3-6)		150.00
	Vol - 3 (satakas 7-8)		150.00
	Vol - 4 (satakas 9-11)		150.00
2.	James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)	Price : Rs.	100.00
3.	P. C. Samsukha - Essence of Jainism translated by Ganesh Lalwani.	Price : Rs.	15.00
4.	Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord,	Price : Rs.	15.00
5.	Verses from Cidananda Translated by Ganesh Lalwani	Price : Rs.	15.00
6.	Ganesh Lalwani - Jainthology	Price : Rs.	100.00
7.	Lalwani and S. R. Banerjee- Weber's Sacred Literature of the Jains	Price : Rs.	100.00
8.	Prof. S. R. Banerjee Jainism in Different States of India	Price : Rs.	100.00
9.	Prof. S. R. Banerjee Introducing Jainism	Price : Rs.	
10.	Smt. Lata Bothra- The Harmony Within	Price : Rs.	100.00
11.	Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira	Price : Rs.	100.00
12.	Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity	Price : Rs.	100.00

Hindi :

1.	Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	20.00
3.	Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	30.00
4.	Ganesh Lalwani - Chandan-Murti Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	50.00
5.	Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira	Price : Rs.	60.00

6.	Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat,	Price : Rs.	45.00
7.	Ganesh Lalwani -- Panchdasi.	Price : Rs.	100.00
8.	Rajkumari Begani-Yado ke Aine me.	Price : Rs.	30.00
9.	Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra	Price : Rs.	15.00
10.	Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm	Price : Rs.	24.00
11.	Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika	Price : Rs.	20.00
12.	Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad	Price : Rs.	250.00
13.	Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra	Price : Rs.	50.00
14.	Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan	Price : Rs.	50.00
15.	Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal	Price : Rs.	50.00
16.	Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh	Price : Rs.	

Bengali :

1.	Ganesh Lalwani-Atimukta,	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita	Price : Rs.	20.00
3.	Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma.	Price : Rs.	15.00
4.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma	Price : Rs.	20.00
5.	Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra	Price : Rs.	25.00
6.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita	Price : Rs.	20.00
7.	Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti	Price : Rs.	20.00

Some Other Publications :

1.	Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir	Price : Rs.	15.00
2.	Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan	Price : Rs.	10.00
3.	Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma	Price : Rs.	100.00
4.	Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali)	Price : Rs.	
5.	Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali)	Price : Rs.	50.00
6.	K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira	Price : Rs.	25.00

मोह रहित मनुष्य दुःख मुक्त है।

B C JAIN
JEWELLERS
Since 1926

B.C. JAIN JEWELLERS PVT. LTD.

22, Camac Street
3rd floor, Block-A
Kolkata - 700 017
Phone : 2283-6203/6204/0056
Fax : 2283-6643
Resi : 2358-6901,2359-5054

TITTHAYARA
Vol XXXV No.06
25th September 2011

Registered
No KOL RMS / 070/2010-12
R.N.I. 30181/77

सभी प्राणियों के लिये मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ होता है,
क्योंकि बुरे कर्मों का फल निश्चय ही मिलता है
अतः मनुष्य को क्षण भर भी प्रमाद न कर
शुभ कार्यों में तत्पर रहना चाहिये।

Kamal Singh Rampuria

Rampuria Mansions
17/3, Mukhram Kanoria Road, Howrah
Phone No. : 2666-7212/7225